IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

जातिवाद की उत्पति, एक ऐतिहासिक अध्ययन:

1st author- DEEPAK RESEARCH SCHOLAR CENTRAL UNIVERSITY OF HIMACHAL PRADESH

2nd author- KEWAL KUMAR RESEARCH SCHOLAR HIMACHAL PRADESH UNIVERSITY SHIMLA

सारांश :

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में एकरूपता नही रही है। अगर हम भारतीय इतिहास का अध्ययन करे तो हम पायेगे की प्राचीन काल में भारतीय समाज की परिस्थिति वर्तमान और मध्यकालीन परिस्थियों से बिल्कुल भिन्न थी। प्राचीन भारतीय इतिहास के वैदिक काल में भारतीय समाज कार्यकुशलता पर आधारित था, जो की वर्तमान समाज से बिलकुल भिन्न था। समाज में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी। यह वर्ण व्यवस्था कार्यकुशलता पर आधारित थी कोई भी अपनी योग्यता से अपना वर्ण बदल सकता था। उतर वैदक काल तक समाज में कुरीतियों ने घर कर लिया और समाज वर्ण व्यवस्था अब वंशानुगत हो गयी। वर्ण व्यवस्था के वंशानुगत हो जाने से निम्न वर्ग के लोगो की स्थिति बहुत दयनीय हो गयी। निम्न वर्ग के लोगो का बहुत शोषण होने लगा । समाज में उन्हें कोई भी अधिकार प्राप्त नही था ,उन्हें सार्वजानिक कुओ, तालाबो से भी पानी भरने नही दिया जाता था। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगो को घृणा की दृष्टि से देखते थे। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में जातिवाद, अस्पृश्यता अपनी चरम सीमा पर थी। दलितों का हर प्रकार से शोषण किया जा रहा था। समाज में फैली इन कुरीतियों को दूर करने के लिए कुछ समाजसुधारको ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। वर्तमान में शिक्षा के और सविधान में दिए गये अधिकारों के कारण निम्न वर्ग के लोगो की स्थिति में सुधार आया है किन्तु आज भी जाति के आधार पर उनके साथ भेद-भाव होता ही रहता है।

शब्द संकेत : - वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता, जातिवाद, दलित, शुद्र, शोषण ।

शोधविधि:

प्रस्तुत शोध पत्र में एतिहासिक और व्याख्यात्मक विधि का प्रयोग किया गया है, जिसमे द्वितीयक स्त्रोतों जैसे विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तको, शोध पत्रों एवं इंटरनेट द्वारा जानकारी एकत्रित कर उनकी व्याख्या की गयी है।

उदेश्य:

1. भारतीय इतिहास में जातिवाद का अध्ययन करना ।
2. समाज विखंडन में जातिवाद की भूमिका का अध्ययन करना ।
3. जातिवाद के दुष्परिणामो का अध्ययन अध्ययन ।

भूमिका:

भारत में यदि किसी भारतीय से उसकी जाति पूछ ली जाए, तो उसके लिए ये बिलकुल भी आश्चर्य का विषय नहीं होगा, क्यूंकि स्वंत्रता के सात दशक बाद भी इस धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में चाहे मात्र कुछ घंटो का संवाद बनाना हो या जिन्दगी भर के लिए निभाने वाला कोई रिश्ता, सिर्फ जाति का मुद्दा ही है जो दो लोगों को जोड़ता हैं। इसलिए शायद जातिवाद पर बात करना आवश्यक हो गया हैं। इसकी परिभाषा भी कोई सीमित नहीं हैं,जातिवाद शब्द के भीतर जो स्वार्थ छुपकर बैठा हैं, वो ही इसे एक शब्द में ही अच्छे से समझा सकता हैं। वास्तव में जातिवाद जिन दो शब्दों से मिलकर बना है वो ही इसकी दिशा को मोड़ देते हैं, "जाति" का अर्थ हैं वो समुदाय जो आपस में आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों से जुड़ा हुआ हो, और "वाद" का मतलब कोई व्यवस्थित मत या सिद्धांत जिसकी अधिकता कब हो जाती हैं पता नहीं चलता, ऐसे में जाति और वाद से मिलकर बना यह जातिवाद शब्द किसी एक समुदाय विशेष को ही नहीं बल्कि पूरे समाज को गलत तरीके से प्रभावित कर सकता हैं। अब राजनीति में इसका उपयोग बहुत किया जाता हैं इसी कारण शायद भारत जैसे पंथ-निरपेक्ष, धर्म-निरपेक्ष लोकतांत्रिक देश में भी जातिवाद को इतना पोषण मिल रहा हैं।

'काका कालेकर" के शब्दों में जातिवाद शक्तिशाली पक्ष द्वारा की जाने वाली वो अंधाधुंध अवहेलना हैं जो कि स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक तत्वों जैसे समानता,भाईचारे को खत्म करती हैं। जबकि "के.एम.पणिक्कर" के शब्दों में जातिवाद किसी जाति या उपजाति की वो ईमानदारी हैं जो कि राजनीति में अनुवादित हो चुकी हैं।"

भारतीय समाज में जातिवाद की उत्पति कब हुई, ये बता पाना मुश्किल है, क्यूंकि आदिकाल में मानव छोटे-छोटे समूह बनाकर जीवन यापन करते थे। इसी क्रम में ये समूह कब एक जाति में बदले उस समय का पता लगाना सम्भव नहीं है. लेकिन जातिवादिता की रूढ़ता कैसी जन्मी होगी ये जरुर समझा जा सकता है देश पर जब बाहरी आक्रमण होने शुरू हुए तो अपने अस्तित्व को बचाने के प्रयास में

जातिवादीता जटिल होती चली गई, इस तरह से जाति को कुछ नियमों से बाँधा जाने लगा जैसे रोटीबंदी, बेटीबंदी, ये "बंदी" प्रत्यय के साथ नाम इसलिए बने, क्यूंकि इन दोनों ही शब्दों में रोटी मतलब रोजगार और बेटी को मतलब बेटी के विवाह को एक सीमा का निर्धारण कर इसे बाँध दिया गया। रोटी-बंदी का अर्थ हैं कि अपना खाना और अपना रोजगार अपनी जाति के बाहर किसी से भी साझा नहीं करना। जबकि बेटीबंदी में बेटियों का विवाह जाति से बाहर करना निषिद्ध कर दिया गया। भारत में इस कारण बहुत से धर्म और धर्म में भी भीतर तक जाति और उप-जाति और इससे भी आगे तक वर्गीकरण हुआ है,लेकिन इसका औचित्य कहीं से भी तात्कालिक परिस्थतियों के लिए आवश्यक नहीं हैं।

भातीय इतिहास में जातिवाद का अध्ययन:

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की उत्पति वैदिक काल से ही मानी जाती है। वैदिक काल में समाज वर्णव्यवस्था पर आधारित था। सम्पूर्ण समाज चार वर्णों- व्राह्मण,क्षत्रीय,वैश्य और शुद्र में विभाजित था। वैदिक काल में यह विभाजन अस्थायी था अथवा कार्यकुशलता पर आधारित था। कोई भी अपनी कार्यकुशलता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था क्योंकि उस समय वर्ण विभाजन कर्म के अनुसार था न कि पैतृक था। ऋग्वेद के एक मंत्र से इस कथन को पुष्टि होती है। जिसमें लिखा है कि 'मैं कवि हूं मेरा पिता वैध है, और मेरी माता पत्थर पर अनाज पीसने वाली है।[1] इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित न होकर कर्म पर आधारित थी।

वैदिक काल में सामजिक व्यवस्था बड़ी उच्च्च व्यवस्था थी लेकिन उतर वैदिक काल में सामाजिक कुरीतियों ने घर करना शुरू कर दिया। समाज अब भी चार वर्णों ब्राह्मण,क्षत्रीय, वैश्य और शुद्र में विभाजित था। ब्राह्मणों की स्थिति समाज में सबसे उच्च्च थी,उन्ही के द्वारा यज्ञ और धार्मिक कर्मकाण्डों का कार्य किया जाता था। क्षत्रीय वर्ग को रक्षा और युद्ध सम्बन्धी कार्य दिए गये थे। वैश्य व्यापर और कृषि सम्बधी कार्य करते थे। शुद्र का कार्य इन तीनो वर्णों की सेवा करना था। उतर वैदिक काल तक समाज में कई कुरीतिया आ गयी थी इसलिए अब वर्ण व्यवस्था जटिल हो गयी थी। अब कार्यकुशलता का स्थान वंशानुगत हो गया था। ऋग्वेद के दसवें मण्डल 'पुरुष सूक्त' में प्रथम बार यह उल्लेख किया गया कि ईश्वर ने आदि-पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से राजन्य (क्षत्रीय), जाँघों से विश् (वैश्य) और चरणों से शूद्र को जन्म दिया। इससे स्पष्ट है कि वर्ण अथवा जाति व्यवस्था का स्वरूप ऋग्वेद के निर्माण के अन्तिम समय में बनना आरम्भ हुआ था। आरम्भ में समाज के दो भाग थे-द्विज (आर्य) और अद्विज (अनार्य)। परन्तु धीरे-धीरे वर्ण व्यवस्था आरम्भ हुई। ब्राह्मणों और राजन्यों ने इसमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया। जनसाधारण आर्य जो कृषि, पशुपालन अथवा अन्य व्यवसायों में लगे हुए थे, 'विश्' कहलाने लगे और अनार्यों को शूद्रों की श्रेणी में रखा गया। परन्तु इस काल में वर्ण-व्यवस्था कठोर न थी। व्यवसायों के आधार पर आर्यों में वर्ण परिवर्तन सम्भव था। विवाह सम्बन्धों और खान-पान में आर्यों में कोई बन्धन

न था। केवल दस्यु, दास अथवा शूद्रों से, जो आर्य न थे, अन्तर किया जाता था। ऋग्वेद में दान के लिए पुरुष-दान का उल्लेख बहुत कम मिलता है , जबकि नारी दास-दान में स्वीकार की जाती थी, इसके विवरण बहुत हैं। इससे यह अनुमान होता है कि धनी वर्ग में घरेलू दास प्रथा ऐश्वर्य के प्रतीक के रूप में विद्यमान थी। परन्तु आर्थिक उत्पादन में दास प्रथा उस समय प्रचलित न थी अर्थात् कृषि उत्पान या किसी भी अन्य वस्तु के उत्पादन के लिए मनुष्यों को दासों के रूप में नहीं रखा जाता था।[2]

उतर वैदिक समाज में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का स्थान श्रेष्ठ हो गया। ब्राह्मणों ने अपनी श्रेष्ठता का दावा किया परन्तु क्षत्रीय इसमें उसके प्रतिद्वन्द्वी बने रहे। बाद में इन दो वर्णों में व्यावहारिक समझौता हो गया। ब्राह्मण और क्षत्रीय, दोनों ही समाज के ऐसे वर्ग थे जो उत्पादन में कोई भाग नहीं लेते थे, परन्तु उत्पादन से अधिक लाभ स्वयं प्राप्त करना चाहते थे। दोनों की प्रतिद्वन्द्विता का मूल कारण भी सम्भवतया यही आर्थिक कारण था। बाद में व्यावहारिकता के कारण दोनों वर्गों ने पारस्परिक समझौता कर लिया जिसके द्वारा ब्राह्मणों को सम्मान की दृष्टि से श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया और क्षत्रियों ने धीरे धीरे भूमि पर स्वामित्व के अधिकार को प्राप्त कर लिया। इसी कारण, यद्यपि इस काल में राजा को भूमि का स्वामी स्वीकार नहीं किया गया तब भी उसे किसी व्यक्ति को भूमि से पृथक करने का अधिकार प्राप्त हो गया। वैश्यों का स्तर उन दोनों की अपेक्षा कुछ निम्न समझा गया और शुद्रों की स्थिति गिरने लगी। साधारणतया श्रेष्ठ जाति वाले पुरुष निम्न जातियों की कन्याओं से विवाह कर सकते थे, परन्तु निम्न जाति वाले पुरुष अपनी जाति से श्रेष्ठ जाति की कन्या से विवाह नहीं कर सकते थे। परन्तु तब भी अन्तर्जातीय विवाह होते थे। केवल शूद्रों से विवाह सम्बन्ध करना अच्छा नहीं समझा जाता था। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में स्पष्टतया चार वर्णों अथवा जातियों में विभाजित हो गया। परन्तु अभी यह जाति व्यवस्था कठोर न थी। अन्तर्जातीय विवाह और खानपान पर कोई बाधा न थी और एक व्यक्ति की जाति उसके कार्यों से निश्चित होती थी। केवल शूद्र इसमें एक अपवाद बनते जा रहे थे।वर्ण-व्यवस्था की यह स्थिति उपनिषद-काल तक रही। धर्म-सूत्रों, महागाथा-काल और उसके पश्चात् स्मृति-काल तक धीरे-धीरे यह कठोर और गतिहीन होती गयी, यहाँ तक कि स्मृति-काल में हमें अस्पृश्य जाति के भी प्रमाण प्राप्त हो जाते हैं।[3]

वैदिकोत्तर काल के बाद का समाज भी स्पष्टत: चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रा में विभाजित था। हर वर्ण के कर्त्तव्य अलग-अलग निर्धारित थे, और इस पर जोर दिया जाता था कि वर्ण जन्ममूलक है और दो उच्च वर्णों को कुछ विशेषाधिकार दिए गए। ब्राह्मण, जिन्हें पुरोहितों और शिक्षकों का कर्तव्य सौंपा गया था, समाज में अपना स्थान सबसे ऊँचा होने का दावा करते थे। वे कई विशेषाधिकारों के दावेदार थे, जैसे दान लेना, करों से छुटकारा, दंडों की माफी आदि। उत्तर वैदिक ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ ब्राह्मणों ने ऐसे अधिकारों का लाभ उठाया। वर्णक्रम में क्षत्रियों का स्थान दूसरा था। वे युद्ध करते थे, शासन करते थे और किसानों से उगाहे गए करों पर जीते थे। वैश्य

खेती, पशुपालन और व्यापार करते थे और ये ही मुख्य करदाता थे, यद्यपि इन्हें दो उच्च वर्णों के साथ द्विज नामक समूह में स्थान मिला था। द्विज को जनेऊ पहनने और वेद पढ़ने का अधिकार था, पर शूद्र को इससे वंचित रखा गया था। शूद्रों का कर्त्तव्य ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना था, और स्त्रियों की भाँति उन्हें भी वेद पढ़ने के लिए अधिकार से अलग रखा गया था। वैदिकोत्तर काल में वे गृहदास, कृषिदास, शिल्पी और मज़दूर के रूप में दिखाई देते हैं। स्वभाव से ही क्रूरकर्मा, लोभी और चोर कहे गए हैं, और उनमें से कुछ अस्पृश्य भी माने जाते थे।

वर्णव्यवस्था में जो जितने उँचे वर्ण का होता था वह उतना ही शुद्ध और सुविधाधिकारी समझा जाता था। अपराधी जितने ही नीच वर्ण का होता उसके लिए सजा उतनी ही अधिक कठोर होती थी। यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह के वर्ण विभाजन वाले समाज में तनाव पैदा होता और वैश्यों और शूद्रों में इसकी कैसी प्रतिक्रिया थी यह जानने का कोई साधन नहीं है। परंतु क्षत्रिय लोग, जो शासक के रूप में काम करते थे, ब्राह्मणों के धर्म विषयक प्रभुत्व पर प्रबल आपत्ति करते थे, और लगता है कि उन्होंने वर्णव्यवस्था को जन्ममूलक मानने के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया था। विविध विशेषाधिकारों का दावा करने वाले पुरोहितों या ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विरुद्ध क्षत्रियों का खड़ा होना नए धर्मों के उद्भव का अन्यतम कारण हुआ। जैन धर्म के संस्थापक वर्धमान महावीर और बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध दोनों क्षत्रिय थे और दोनों ने ब्राह्मणों की मान्यता को चुनौती दी। जैन एवं बौद्ध धर्म वैदिक कर्मकांड तथा ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के विरोध में उत्पन्न हुए थे। इस दृष्टि से निश्चय ही दोनों पंथों का सम्बन्ध सामाजिक आर्थिक पद्धति से था। दूसरे शब्दों में दोनों पंथों ने अपने युग की महत्वपूर्ण समस्याओं की पहचान करके उनके विरुद्ध चुनौती उत्पन्न की। सर्वप्रथम दोनों पंथों ने यह प्रमाणित किया कि वर्ण पद्धति एवं जाति पद्धति ईश्वरीय नहीं बल्कि मानव निर्मित है। उन्होंने मानवीय आधार पर इसका खंडन किया तथा दोनों पंथों ने जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था के स्वरूप में चुनौती दी। यद्यपि दोनों ने निचले वर्ण के अस्तित्व को स्वीकार किया तथापि उनकी वर्तमान स्थिति को कर्म के साथ जोड़कर देखा। सबसे बढ़कर उन्होंने निम्न वर्णों एवं अछूतों के लिए भी निर्माण या कैवल्य का विधान किया। जैन धर्म की तुलना में बौद्ध धर्म की दृष्टि अधिक मूल परिवर्तनवादी थी क्योंकि उसने परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार करके वैदिक धर्म की जड़ पर ही प्रहार किया। इस दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था के प्रति बौद्ध धर्म का दृष्टिकोण असमझौतावादी प्रतीत होता है। यही कारण है कि यह वर्तमान में भी अपनी विशिष्टता बनाए हुए है तथा 1956 में भीमराव अम्बेडकर को भी इस बात के लिए प्रेरित किया गया कि ये बौद्ध सामाजिक व्यवस्था में दलितवर्ग हेतु विकल्प ढूंढ़ने का प्रयास करे। इस दृष्टि से बुद्ध विश्व के कुछ महानतम सामाजिक चिंतकों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पक्ष था कुछ लोगों की आर्थिक स्थिति में व्यापक गिरावट आना। बौद्ध चिंतन को इसके प्रति संवेदनशील होने का ही यह परिणाम है कि सर्वप्रथम बौद्ध साहित्य में ही दलित (दरिद्र) शब्द का प्रयोग दिखता है जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों ने इस सामाजिक आर्थिक विभाजन का विकल्प जैन अथवा बौद्ध संघों के रूप में प्रस्तुत करना

चाहा, क्योंकि वहाँ व्यक्ति के बीच पूर्ण समानता थी। इस प्रकार यह समाज के समक्ष एक आदर्श प्रतिरूप था। जोकि तुलसी एवं गांधी के रामराज्य की परिकल्पना में भी दिखता है।[4]

मध्यकाल में भारतीय समाज में जातिवाद, अस्पृश्यता अपनी चरम सीमा पर पहुच चुकी थी। इस काल में ब्राह्मण वर्ग का प्रभुत्व था। निम्न वर्ग के लोगो की स्थिति बहुत दयनीय थी। समाज में उन्हें किसी भी प्रकार का अधिकार प्राप्त नही था। उच्च वर्ग के लोगो के द्वारा निम्न वर्ग का शोषण हो रहा था। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग को घृणा की दृष्टि से देखते थे। मध्यकाल में निम्न वर्ग के लोगो को सार्जनिक कुओं, तलवों से पानी भरने का अधिकार नही था। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के मात्र स्पर्श से ही खुद को अपवित्र मानते थे इसलिए उनके बीच कोई भी सामाजिक सम्बन्ध नही थे। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग से किसी भी प्रकार के शादी विवाह जैसे सम्बन्ध नही रखते थे। अगर कोई दलित मात्र वेद मंत्र भी सुन लेता था तो उसके कान में लोहा पिघलाकर दाल दिया जाता था। धीरे-धीरे समाज में समाजसेवको का आगाज हुआ जिन्होंने की भारतीय समाज की बिगड़ी हुयी व्यवस्था को ठीक करने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इन समाज सुधारको में संत रविदास , कबीरदास, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि प्रमुख थे।

18वीं शताब्दी में भारतीय समाज और धर्म अवनति के कगार पर था। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य का तेजी से पतन शुरू हो गया। राजनीतिक अराजकता की स्थिति व्याप्त हो गई। सर्वत्र सत्ता-संघर्ष के छोटे-मोटे दौरों की श्रृंखला सी बन गई और भारतीय समाज असुरक्षा एवं अस्थिरता के भंवर में फंस गया। सामाजिक कठोरता एवं असंगत सामाजिक 'प्रथाएं' 18वीं सदी के भारत की विशेषताएं बन गई। ग्रामीण समाज छोटे दायरे में सिमटता हुआ नगरीय समाज से लगभग कट सा गया, धार्मिक जीवन के अत्यधिक रूढ़िग्रस्त हो जाने से स्थिति और विषम हो गई- कुल मिलाकर 18वीं सदी भारत के लिए एक अंधकारमय युग बन गई। इस समय पंडित वर्ग किसी भी सामाजिक बुराई को शास्त्रोचित बता कर इसे धार्मिक कार्य का रूप दे सकते थे। कुल मिला कर 18वीं सदी असहिष्णुता और असंगत प्रथाओं का दौर थी। वैदिक काल में कर्म के आधार पर निर्मित वर्ण-व्यवस्था कालान्तर में अत्यधिक जटिल एवं कठोर होती गई। वर्ण-व्यवस्था हिन्दू धर्म की एक विशेषता रही है जिसमें विभिन्न वर्णों का श्रेणी-क्रम निश्चित है। यह श्रेणी-क्रम सामाजिक संरचना का आधार था। निम्न वर्गों की उच्च श्रेणी में गतिशीलता वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से निषिद्ध थी। मोटे रूप से, संदर्भित सदी में धार्मिक आडम्बर और प्रतिबन्ध कठोर हो गये थे।[5]

18वीं सदी में वर्ण-व्यवस्था का श्रेणी-क्रम ही कठोर न था बल्कि प्रत्येक वर्ण भी अनेक जातियों में तथा जातियां अनेक उपजातियों में विभक्त हो गईं जिनमें भी परस्पर ऊंच-नीच की भावना पर आधारित श्रेणी क्रम बन गया। फलतः समाज अनेक वर्गों में विभक्त हो अपनी सामाजिक एकता खो बैठा। व्यक्तिगत योग्यता एवं क्षमता के होते हुए भी किसी जाति को व्यक्ति अन्य जाति का व्यवसाय नहीं अपना

सकता था और न श्रेणी क्रम में उच्च स्थान ही प्राप्त कर सकता था। सामाजिक भेद भाव के कारण देश को अनेक दुष्परिणाम भुगतने पड़े। मध्यकाल में मुसलमानों तथा आधुनिक काल में अंग्रेजों के अल्पसंख्यक होते हुए भी हिन्दुओं को उनकी राजनीतिक दासता स्वीकार करनी पड़ी। वर्ण एवं जाति व्यवस्था की कठोरता की चरम सीमा के कारण 18वीं सदी के भारतीय समाज की अन्य विशेषता अस्पृश्यता का प्रचलन था। उच्च वर्ण या जाति के लोग स्वयं को पवित्र एवं अपने से निम्न वर्ण या जाति के लोगों को अपवित्र समझ कर उन्हें अस्पृश्य मानते थे । अंग्रेजों के भारत आगमन के बाद ईसाई धर्म प्रचारकों ने भारतीय समाज की इस कमजोरी का लाभ उठाकर निम्न वर्ण एवं जातियों के ईसाई धर्म में दीक्षित करने में सफलता प्राप्त की क्योंकि हिन्दू समाज की संकीर्णता के कारण निम्न वर्ग के लोग अपनी योग्यता एवं क्षमता के होते हुए भी समाज में कोई प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त नहीं कर सकते थे, जबकि ईसाई धर्म में दीक्षित हो उन्हें उच्च स्तर के जीवन-यापज करने, शिक्षा-सुविधाओं का लाभ उठाने तथा उच्च पदों पर आसीन होने का आकर्षण था। निम्न वर्णों के अनेक लोगों द्वारा धर्म परिवर्तन कर लेने के कारण उनके समाज को भी काफी क्षति उठानी पड़ी। भारतीय समाज विखंडित होता गया। संक्षेप में, 18वीं सदी में छुआछूत की प्रथा अपने उग्र रूप में थी।

18 बी शताब्दी में हिन्दू चतुर्वर्ण व्यवस्था के अनुसार, जाति ही किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करती है। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं शुद्धता की पुष्टि उसकी जाति के द्वारा होती है। जाति ही निर्धारित करती है कि किसे शिक्षा ग्रहण करने एवं सम्पत्ति रखने का अधिकार है, किसे, कौन सा व्यवसाय अपनाना चाहिये तथा किसे, किस से वैवाहिक संबंध स्थापित करने चाहिए। किसी व्यक्ति के पूर्वजन्म के कर्मों का आकलन भी इसी बात से किया जाता था कि इस जन्म में वह किस जाति में पैदा हुआ है। परिधान, खान-पान, वास स्थान, कृषि एवं पीने के पानी का स्रोत तथा मंदिर में प्रवेश के अधिकार जैसे मुद्दों का निर्धारण भी जाति के द्वारा ही होता था। इस चतुर्वर्ण व्यवस्था का सबसे निंदनीय पहलू था, समाज में अस्पृश्यता या छुआछूत की भावना का जन्म। जो लोग निम्न जाति में पैदा होते थे उन्हें अछूत समझा जाता था। उन्हें सामान्यतयाः गांवों से दूर बसाया जाता था तथा मंदिरों में उनके प्रवेश करने पर पाबंदी थी। इस वर्ग के लोग अनेक प्रकार के उत्पीड़न एवं भेदभाव के शिकार थे। ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा कुछ कदम उठाए गए जिनसे कुछ सीमा तक जातिगत भावना में कमी आई। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना से जाति या वर्ण व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन आया। अंग्रेजों ने सभी जातियों के लोगों को सेना एवं अन्य प्रशासकीय क्षेत्रों में नियुक्त किया। यद्यपि तत्कालीन उच्च वर्ग के लोगों ने इसे अपना अपमान समझा तथा इसका विरोध भी किया लेकिन, अंग्रेजों की इस नीति से निम्न जाति के लोगों में थोड़ा सुधार अवश्य हुआ। सम्पत्ति के निजी स्वामित्व एवं भूमि के मुक्त क्रय से भी जातीय समीकरणों में परिवर्तन हुए। धीरे-धीरे गांवों की जाति-व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन होने लगा। आधुनिक वाणिज्य एवं व्यवसाय के विकास एवं परिवहन के साधनों में तीव्र वृद्धि से भी सामाजिक गतिशीलता में परिवर्तन हुए। अंग्रेजों ने ग्राम पंचायतों की जाति पर आधारित न्याय प्रणाली को समाप्त कर आधुनिक

न्याय व्यवस्था की स्थापना की जिसमें सभी जातियों के लिये समान न्याय की प्रणाली थी। प्रशासनिक पदों एवं सरकारी कार्यालयों में भर्ती के अवसर भी सभी जाति के लिये खोल दिये गये। अंग्रेजों की शिक्षा व्यवस्था में सभी जातियों को शिक्षा ग्रहण करने के समान अवसर दिये गये।[6]

सामाजिक सुधार आंदोलनों ने भी जाति-आधारित शोषण को कम किया। कालांतर में समाज सुधार कार्यक्रमों ने भी जाति पर आधारित शोषण को कम करने के प्रयत्न किये। 19वीं शताब्दी के मध्य से विभिन्न समाज सुधार संगठनों यथा-ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसायटी आदि ने भी निम्न जाति के लोगों की दशा सुधारने के अनेक प्रयास किये। इन संगठनों ने अछूतों एवं निम्न जाति के लोगों के मध्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार का कार्य किया तथा उन्हें मंदिरों में प्रवेश दिलाने, तालाबों से जल ग्रहण करने एवं सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग करने की दिशा में प्रयत्न किये। हालांकि कुछ समाज सुधारकों ने चतुर्वर्ण व्यवस्था का थोड़ा पक्ष लिया लेकिन उन्होंने भी जाति -प्रथा एवं छुआछूत की आलोचना की। इन समाज सुधारकों ने जाति-प्रथा की कठोरता की निंदा की तथा जन्म के आधार पर जाति व्यवस्था के निर्धारण को अनुचित बताया। उन्होंने 'कर्म' के सिद्धांत को प्राथमिकता देने की वकालत की। इन्होंने लोगों से अपील की कि वे भूख से मरने की बजाय सक्रिय हों तथा मानव जगत के कल्याण हेतु रचनात्मक कार्यों में सहयोग करें। आर्य समाज ने शूद्रों को उच्च शिक्षा ग्रहण करने, यज्ञोपवीत धारण करने तथा उच्च जाति के लोगों के समान अधिकार प्राप्त करने का समर्थन किया।

जातिवाद के दुष्परिणाम:

- जत्तिवाद की उत्पति से सम्पूर्ण समाज विखंडित हो गया और समाज में एकता का आभाव हो गया।
- जातिवाद की उत्पति से मानवता का ह्रास हुआ और वैमनस्य को बढावा मिला।
- जातिवाद से इस्त्रियो की स्थिति में भी गिरावट आयी और स्त्रियों का काफी शोषण हुआ। वर्तमान में स्त्रियों को संविधान अधिकार दिए गये है लेकिन आन्तरिक रूप से अभी भी उनसे भेद- भाव देखने को मिलता है।
- जातिवाद से समाज में शैक्षणिक, आर्थिक, नैतिक रूप भेद-भाव बढाता रहा है।

नोट:

भारतीय समाज में जातिवाद के विखंडन के कारण देश की सुरक्षा का अतिभार समाज के एक ही हिस्से पर रहा है जिसके कारण मुगलों, तुर्कों, अंग्रेजो ने हमारे देश को गुलाम बनाया है।

निष्कर्ष:

भारतीय समाजिक व्यवस्था का इतिहास एक उच्च कोटि की व्यवस्था के साथ शुरू होता है। जिसमे की किसी भी प्रकार का भेद-भाव स्वीकार नही किया गया। लेकिन धीरे – धीरे समाज में बुराइयाँ घर करती गयी और समाज विखंडित हो गया। जातिवाद की उत्पति से समाज में मानवता का ह्रास हुआ। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच शत्रुता बढने लगी और निम्न वर्ग शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक अधिकारों से वंचित हो गया। वर्तमान में निम्न वर्ग के लोगो को संविधानिक अधिकारों के मिलने से उनकी स्थिति में सुधार अवश्य हुआ है लेकिन अभी भी आन्तरिक तौर उनके साथ भेद-भाव होता रहता है। भारतीय समाज के पिछड़े इलाको में शिक्षा के आभाव के कारण यह भेद भाव काफी देखने को मिलता है। इसके लिए आवश्यक है की इन इलाको में सविधानिक अधिकारों के बारे में जानकारी दी जाये पर शिक्षा के स्तर को भी बढावा दिया जाये।

संदर्भ सूचि:

1: मिश्रा, डॉ महेंन्द्र कुमार.(2014). *भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति.* कल्पना प्रकाशन. जहाँगीर पुरी. दिल्ली.

2: खन्ना, डॉ कैलाश. (2016). *प्राचीन भारत का इतिहास.* अर्जुन पब्लिशिंग हाउस. प्रहलाद गली. अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.

3: पाठक, रश्मि. (2017). *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास.* अर्जुन पब्लिशिंग हाउस. गोविन्द लेन अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.

4: तिवारी, डॉ मुकेश कुमार. (2019). *प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत.* क्रिसन्ट पब्लिशिंग कारपोरेशन. माथुरा लेन. अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.

5: बाला, सरोज. (2018). *आधुनिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास.* ओमेगा पब्लिकेशन्स. जे. एम्. डी. हाउस गली मुरारी लाल. अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.

6: परूथी, डॉ. आर. के. (2016). *आधुनिक भारत.* अर्जुन पब्लिशिंग हाउस. प्रहलाद गली. अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली.